ॐ

श्री समवसरण स्तुति

(अनुष्टुप)

धर्मकाळ अहो! वर्ते, धर्मक्षेत्र विदेहमां;
वीस वीस जहां गर्जे, धोरी धर्मप्रवर्तका.

(शार्दूलविक्रीडित)

ज्यां गर्जे जगनाथ अे परिषदे रचना अलौकिक छे,
देवोना अधिवास—स्वर्ग थकीये शोभा अधिकी दीसे;
देवो—धनपति—स्हायथी सुरपति रचना रचे रम्य अे,
पोताथी ज बनेल ते निरखतां आश्चर्य पोते लहे!

(अनुष्टुप)

अचिंत्य भव्य ने दैवी, रत्नोना आरसा समुं;
प्रभुनुं अे समोसर्ण, बार योजन व्यासनुं.

(शार्दूलविक्रीडित)

धूलिसाल विशाळ, कंकण समो, घेरे समोसर्णने,
देवे वर्ण विविधना रतननी रजथी रच्यो जेहने,
रत्नोनां बहुरंगनां किरणनी ज्योति अति विस्तरे,
आ शुं मेघधनुष भूमि ऊतर्युं सेवे जगत्तातने?

(अनुष्टुप)

घूलिसाल महीं आघे चार छे मानस्तंभ त्यां;
स्वर्णना ने अति ऊंचा, मानीना मान गाळता.

(स्त्रग्धरा)

चामर ने छत्र राजे, ध्वज पण फरके—भव्यने जे निमंत्रे,
घंटा वाजिंत्र वागे, सुरपतिकरथी चैत्यप्रक्षाल थाये;
चोबाजु चार वापी, स्फटिक तटवती, निर्मळा नीरवाळी,
क्यारे अे मानस्तंभे लळी लळी प्रणमुं, गर्वने सर्व गाळी ?

(शिखरिणी)

भूमि छे त्यां दैवी, [1]जिनगृह तणी पावन महा,
घणां मंदिरो ज्यां, अतिशय मनोरम्य रचना;
मनुष्यो देवो त्यां प्रभुभजन ने नृत्य करता,
अहो ! भक्तिभीनां प्रभुचरणमां चित्त ढळतां.

(अनुष्टुप)

कंकणाकारनी छे त्यां, [2]खातिका जलधि समी;
तरंगो, जळप्राणीथी, देव-नावोथी दीपती.

(उपजाति)

मणिना किनारा, अति स्वच्छ पाणी,
जळ शुं द्रव्यां आ शशिकान्तमांथी !

१. जिनमंदिर २. खाई

प्रभु पूजवानी अति भावनाथी
शुं सुरगंगा ऊतरी ऊंचेथी ?

(अनुष्टुप)

भूमि भव्य लतावननी, म्हेकती सुरभिवती;
लताओ ज्यां हसे सर्वे, खीलेलां सुमनो थकी.

(हरिगीत)

त्यां मंद लहरे विविधरंगी पुष्परज बहु ऊडती,
जे ढांकती वन-गगनने संध्या समा रंगो थकी;
पर्वत क्रीडाना दिव्य ने मंडप लताना भव्य छे,
शीतळ शिला [1]शशिकान्तनी ज्यां इंद्र विश्रांति लहे.

(उपजाति)

ऋतु ऋतुनां फूल त्यां खील्यां छे,
वायु सुगंधी बहु विस्तरे छे;
सुवास शुं अे वननां फूलोनी,
के शुं सुकीर्ति जिनना गुणोनी !

(अनुष्टुप)

त्यां छे कोट अति ऊंचो, स्वर्णनो मणिअे जड्यो;
स्वर्णना आभमां जाणे, शोभे नक्षत्रमंडळो.

१. चंद्रकांतमणि

(शार्दूलविक्रीडित)

देवो रक्षक द्वारना, कर विषे आयुध धारी ऊभा,
मंगळ द्रव्य सुरम्य ने नवनिधि, सो तोरणो शोभता;
द्वारोनी द्वय बाजुअे स्फटिकनी बे नाट्यशाळा दीसे,
दूरे बे घट धूपना, धूम थकी ढांके अहो! आभने.

(हरिगीत)

अे नाट्यशाळा गाजती वीणा मृदंग सुतालथी,
गांधर्व–किन्नरी गानथी, बहु देवदेवी सुनृत्यथी;
देवांगना जयगान करती, नाचती, आनंदती,
अभिनय करी जिन–विजयनो कुसुमांजलि जिन अर्पती
––कुसुमांजलि प्रभु अर्पती.

(शार्दूलविक्रीडित)

चंपक, आम्र, अशोक आदि वननी भूमि मनोहारिणी,
वच्चे रम्य नदी, तळाव, भवनो, शी चित्रशाळा रूडी!
कोकिला टहुके मधुर हलके, फळफूल वृक्षे लचे,
जाणे अर्घ लइ ऊभां तरुवरो धरवा त्रिलोकेशने!

(तोटक)

बहु वृक्ष विशाळ मनोहरणां,
रविकिरणनो पथ रोकी रह्यां,
तरुतेज झळोमळ छाई रह्यां,
नहि दिवस रात जणाय तिहां.

तहीं चैत्यतरुवर दिव्य महा,
मूळमां प्रतिमाजी विराजी रह्यां;
सुर भकितनी धून मचावी रह्यां,
जयगान थकी वन गाजी रह्यां.

(अनुष्टुप)

स्वर्णनी मेखला जेवी, शोभे त्यां वनवेदिका;
जडेली रत्ननी छे ने, पछी छे ध्वजभूमिका.

(वसंततिलाका)

माळा–मयूर–कमळादि सुचिह्न साथे,
सुवर्णस्तंभ पर शी ध्वजपंक्ति राजे!
फरकावती विजय अे जगनाथनो के
बोलावती त्रिजगने जिन पूजवाने?

(अनुष्टुप)

कान्तिमान, अति ऊंचो, कोट चांदी तणो अहो!
द्वारनी दिव्य लक्ष्मीथी, नाट्यशाळाथी दीपतो.

(तोटक)

शी कल्पतरुभूमि रम्य अहा!
नदी, वाव, सभागृह स्वर्गसमा;
दशविध अहो! तरुकल्प तळे,
निज स्वर्ग भूली बहु देव रमे.

मालांग तरु बहु माळ धरे,
दीपांग तरु पर दीप बळे;
फूलमाळ अने दीपमाळ वडे,
वन पूजी रह्युं शुं जिनेश्वरने ?
सिद्धार्थतरु अति दिव्य दीसे,
मनवांछित जे फळदायक छे;
त्रण छत्र रहे तरुराज परे
फरके ध्वज, सुंदर घंट बजे.
अे वृक्ष तळे सिद्धबिंब रहे,
सुरलोक जहां प्रभुभक्ति करे;
कोइ स्तोत्र भणे, प्रभुगुण स्मरे,
कोई नम्रपणे भगवान नमे.
कोई गान करे, कोइ नृत्य करे,
कोई शुद्ध जळे अभिषेक करे;
कोइ दीप वडे, कोई धूप वडे,
सुर पूजी रह्यां परमातमने.

(अनुष्टुप)

गोपुरादिथी शोभंती स्वर्ण—वनवेदी पछी;
अहो ! प्रासाद सुंदर ने रत्नस्तूप तणी भूमि.

(उपजाति)

सुवर्ण स्तंभो मणिनी दिवालो,
चंद्री समा उज्ज्वळ चारुं हर्म्यो;

देवो रमे त्यां, करता सुवार्ता,
नाचे, बजावे, प्रभुगान गाता.

(हरिगीत)

छे स्तूप बहु ऊंचा मनोहर, पद्मराग मणि तणा,
अरिहंत ने सिद्धो तणां बहु बिंबथी शोभे घणा;
त्यां देव—मानव भावभीना चित्तथी पूजन करे,
अभिषेक, नमन, प्रदक्षिणा करी हर्ष बहु हृदये धरे.

(अनुष्टुप)

नभोस्पर्शी, मनोहारी, अहो ! कोट स्फटिकनो,
पद्मराग तणां द्वारो, मंगळ द्रव्योथी दीपतो.
पछी रत्नदिवालो ने रत्नस्तंभ परे अहो !
मंडप रत्नतणो ऊंचो, अेक योजन व्यासनो.

(वसंततिलका)

श्रीमंडपे गणधरो मुनि, अर्जिका ने,
तिर्यंच, सुरगण, मानवनी सभा छे,
अहि-मोर ने मृग-हरि निज वेर भूले,
सौ शांत लीन थई अमृतधार झीले.

(हरिगीत)

अति उच्च अे मंडप परे सुरहस्तथी पुष्पो खरे,
आ स्फटिकना नभमंडळे तारा शुं नवनवला ऊगे ?

किरणो रतननी भींतनां, वारि-तरंग समा दीसे,
शुं जिन तणा उपदेशनो अमृत-महोदधि ऊछळे ?

(वसंततिलका)

वैडूर्यरत्न तणी सुंदर पीठ शोभे,
ज्यां सोळ सीडी शुभमंगळ द्रव्य राजे;
छे धर्मचक्र अतिशोभित यक्ष माथे,
आरा सहस्र थकी बाळ दिनेश लाजे.

अे पीठ उपर सुवर्णनी पीठ बीजी,
फेलावती अति मनोहर पीत ज्योति;
सुचिह्न आठ ध्वज सुंदर त्यां फरुके,
जे सिद्धना गुण समा अति स्वच्छ शोभे.

कान्तिमती विविध रत्ननी पीठ त्रीजी,
फेलावती विविध रंगनी रम्य ज्योति;
सुरहस्तनां सुमन, मंगळ द्रव्य राजे,
चउविध सुरगण पीठ पवित्र पूजे.

(शार्दूलविक्रीडित)

शोभे गंधकुटी सुगंधस्फुरती, पुष्पे धूपे म्हेकती,
माळा मोतीनी झूलती गगनने रत्नद्युति रंगती;
रत्नोमय शिखरो परे मनहरा लाख्खो धजा ल्हेरती,
शोभानी अधिदेवता ! शुं तुजमां जगश्री मळी सामटी ?

(वसंततिलका)

दिव्यप्रभामय सिंहासन त्यां अनेरुं,
सुवर्णनुं, बहुमूला मणिअे जडेलुं;
दैवी सहस्रदळ पंकज लाल सोहे,
जे पंकजे सुर—मनुजनुं चित्त मोहे.

(उपजाति)

ऊंचे चतुरांगुल जिन राजे,
इन्द्रो, नरेंद्रो, मुनिराज पूजे;
जेवुं निरालंबन आत्मद्रव्य,
तेवो निरालंबन जिनदेह.

(हरिगीत)

चामर ढळे चोसठ प्रभुने क्षीर—अमृत—ऊजळां,
शुं क्षीरसमुद्रतरंग ने गिरिनिर्झरो जिन सेवता ?
त्रण छत्र शोभे जिनशिरे जिनकीर्तिनी मूर्ति समा,
मौक्तिकप्रभा थकी चंद्र ने रत्नांशुथी भास्कर समा.

योजनविशाळ अशोक तरुवर शोकतिमिर निवारतुं,
माणिस्कंध, मणिमय पत्र ने मणिपुष्पथी शुं शोभतुं !
शाखा अनेक झूले अने अलिगण मधुर गुंजन करे,
शुं वृक्ष हस्त हलावतुं बहु भक्तिथी जिनने स्तवे ?

(तोटक)

[1]चतुराननशोभित जिन दीसे,
अशुचि नहि दिव्य शरीर विषे;
नहि रोग, क्षुधा, न जरा तनमां
न निमेष अहो! [2]नयनांबुजमां.

मणिपुंज, सुधारस, चंद्र थकी
वधु सुंदरता जिनदेह तणी;
अति सौम्य प्रसन्न मुखांबुजमां,
भविनेत्र—अलि बहु लीन बन्या.

जिनदेहदिवाकर तेज विषे,
सुरतारकवृंदनुं तेज छुपे;
रविबिंबप्रभा थकी कांति घणी
जिनभास्कर— [3]ओजसमंडळनी.

सुर—दानव—मर्त्यजनो निरखे
स्वभवांतर सात प्रमोद वडे—
जिनदेहप्रभा अति पावनमां
—जगना बहुमंगळ दर्पणमां.

घनगर्जनशी जिनवाणी झरे,
भविचित्तमयूर शुं नृत्य करे!

१. चार मुख २. नयनरूपी कमल ३. भामंडल

सुर—दुंदुभिवाद्य बजे नभमां,
फूलवृष्टि थती बहु योजनमां.
अति कर्णमधुर प्रभुध्वनिमां,
गणी विस्मित थाय 'शी गंभीरता';
ध्वनिधोध वडे भविचित्त भींजे,
शुचि ज्ञान सूझी भवताप बुझे.
ध्वनि दिव्य निरक्षर अेक भले,
बहुरूप बने, जीव सौ समजे;
ज्यम मेघ तणुं जळ अेक भले,
तरुभेद वडे बहु भेद लहे.

जिननाद झीली बहु ज्ञानी बने,
व्रतधारी अने निर्ग्रंथ बने;
मुनिराज गणी जिनवाणी वडे,
स्व-अनुभवतार अखंड करे.

(वसंततिलका)

अंकुर अेक नथी मोह तणो रह्यो ज्यां;
अज्ञान—अंश बळी भस्मरूपे थयो ज्यां;
आनंद, ज्ञान, निज वीर्य अनंत छे ज्यां,
त्यां स्थान मागुं—जिननां चरणांबुजोमां.

जे आभमां जगत आ परमाणुतुल्य,
ते अंतहीन नभनुं जहीं पूर्ण ज्ञान;

सौ द्रव्यना युगपदे त्रण काळ जाणे,
ते नाथने नमन हो मुज नम्रभावे.
दैवी समोसरणमां नहि राग किंचित्,
धूलि मलिन पर ज्यां नहि द्वेष किंचित्;
धूलि, समोसरण केवळ ज्ञेय जेमां,
ते ज्ञानने नमन हो जिनजी! अमारां.

(शिखरिणी)

भले सो इन्द्रोना, तुज चरणमां शिर नमता,
भले इन्द्राणीना रतनमय स्वस्तिक बनता;
नथी अे ज्ञेयोमां तुज परिणति सन्मुख जरा,
स्वरूपे डूबेला, नमन तुजने, ओ जिनवरा!

(वसंततिलका)

जगना अगाध तिमिरे प्रभु! सूर्य तुं छे,
अज्ञान–अंध जगनुं प्रभु! नेत्र तुं छे;
भवसागरे पतितनुं प्रभु! नाव तुं छे,
माता, पिता, गुरु, जिनेश्वर! सर्व तुं छे.

तीर्थंकरो जगतना जयवंत वर्तो,
ॐकारनाद जिननो जयवंत वर्तो;
जिननां समोसरण सौ जयवंत वर्तो,
ने तीर्थ चार जगमां जयवंत वर्तो.

(अनुष्टुप)

समोसर्ण जिनेश्वरनुं, शास्त्रमां बहु वर्ण्युं;
परंतु अे महार्णवनुं, बिंदु मात्र तहीं कह्युं.
विना जोये न समजाये, समोसर्ण जिनेशनुं;
भरते भाग्य न आ काळे, महाभाग्य विदेहीनुं.

(वसंततिलका)

जिनना समोसरणनुं अहीं भाग्य छे ना,
दिव्यध्वनि श्रवणनुं पण भाग्य छे ना;
तोये सीमंधर अने वीरना ध्वनिना
पडघा सुणाय मधुरा हजु आगमोमां.

(अनुष्टुप)

विक्रमशक प्रारंभे, घटना अेक बनी महा;
विदेही ध्वनिना रणका, जेथी आ भरते मळ्या.

(हरिगीत)

बहु ऋद्धिधारी कुंदकुंद मुनि थया अे काळमां,
जे श्रुतज्ञानप्रवीण ने अध्यात्मरत योगी हता;
आचार्यने मन अेकदा जिनविरहताप थयो महा,
रे! रे! सीमंधरजिनना विरहा पड्या आ भरतमां!

(शार्दूलविक्रीडित)

अेकाअेक छूटयो ध्वनि जिनतणो 'सद्धर्मवृद्धि हजो',
सीमंधरजिनना समोसरणमां, ना अर्थ पाम्या जनो;

संधिहीन ध्वनि सुणी परिषदे आश्चर्य व्याप्युं महा,
थोडी वार महीं तहीं मुनि दीठा अध्यात्ममूर्ति समा.
जोडी हाथ ऊभा प्रभु प्रणमता, शी भक्तिमां लीनता!
नानो देह अने दिगंबर दशा, विस्मित लोको थता;
चक्री विस्मय-भक्तिथी जिन पूछे 'हे नाथ! छे कोण आ?'
—छे आचार्य समर्थ अे भरतना सद्धर्मवृद्धिकरा.

(अनुष्टुप)

सुणी अे वात जिनवरनी, हर्ष जनहृदये वहे;
नानकडा मुनिकुंजरने, 'अेलाचार्य' जनो कहे.

(हरिगीत)

प्रत्यक्ष जिनवर दर्शने बहु हर्ष अेलाचार्यने,
ॐकार सुणतां जिन तणो, अमृत मळ्युं मुनिहृदयने;
सप्ताह अेक सुणी ध्वनि, श्रुतकेवळी परिचय करी,
शंका निवारण सहु करी, मुनि भरतमां आव्या फरी.

(वसंततिलका)

वीरनो ध्वनि गुरुपरंपर जे मळेलो,
पोते विदेह जई दिव्य ध्वनि झीलेलो;
ते संघर्यो मुनिवरे परमागमोमां,
उपकार कुंदमुनिनो बहु आ भूमिमां.

आ क्षेत्रना चरम जिन तणा सुपुत्र,
विदेहना प्रथम जिन तणा सुभक्त;
भवमां भूलेल भवि जीव तणा सुमित्र,
वंदुं तने फरी फरी मुनि कुंदकुंद.

(अनुष्टुप)

नमुं हुं तीर्थनायकने, नमुं ॐकारनादने;
ॐकार संघर्यो जेणे नमुं ते कुंदकुंदने.
अहो! उपकार जिनवरनो, कुंदनो, ध्वनिदिव्यनो;
जिन-कुंद-ध्वनि आप्या, अहो! ते गुरुकहाननो.

*